ऋग्० यजु०

वरेण्यम्

द्वितीय भाग

हरबंस लाल सहगल 'साधक'

साम० अथ०

ओ३म्

वरेण्यं

द्वितीय भाग
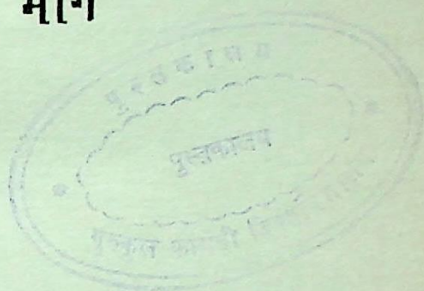
लेखक :

हरबंस लाल सहगल 'साधक'

प्रकाशक :

एच. एल. सहगल, चैरिट्बल ट्रस्ट

T-1698 मल्का गंज रोड, दिल्ली-7

फोन : २५२०३८१

पुस्तकें मिलने का पता—
(१) वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक
(२) ए-६३, अशोक विहार फेस-२, दिल्ली-52
फोन : ७४४२८२

प्रकाशक :
(३) सहगल इण्डस्ट्रियल वर्क्स
मल्का गंज रोड, दिल्ली-7
फोन : २५२०३८१

प्रथम संस्करण फरवरी १९८७

मूल्य : १०.०० रु० मात्र

मुद्रक : अमर प्रिंटिंग प्रेस
८/२५ विजय नगर दिल्ली-९

'समर्पण'

जिनके दर्शाए मार्ग पर चलकर, हो जाता भव-सागर पार।
उनके दिव्य चरणों में अर्पित है, मेरा यह तुच्छ उपहार॥
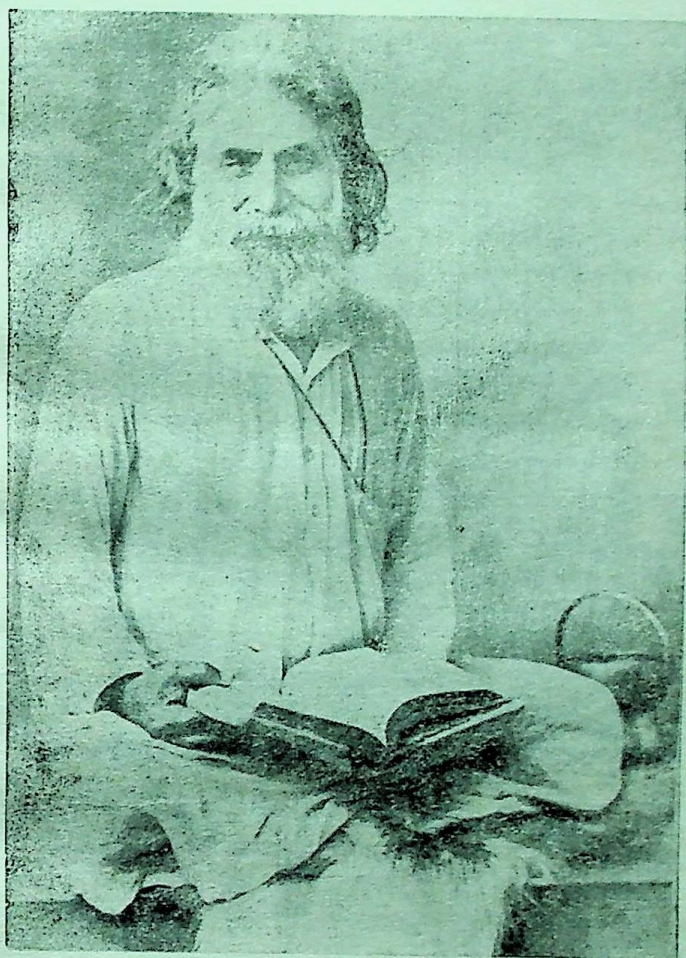
महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

जन्म १८८७ –महाप्रस्थान १९६७
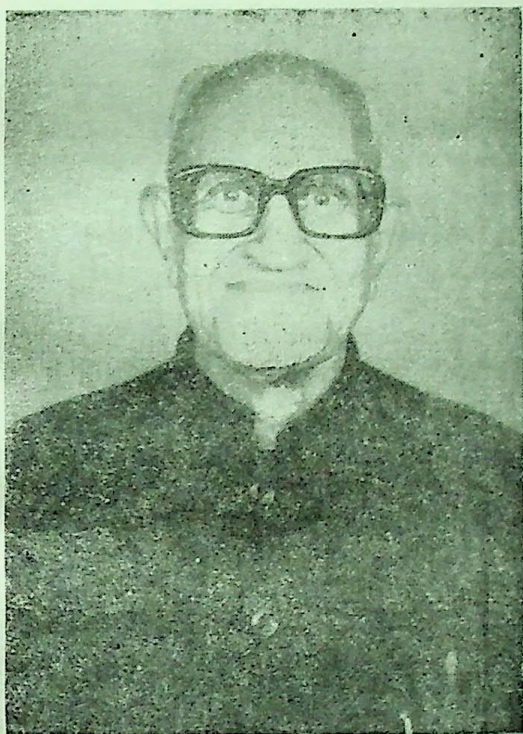
लेखक—हरबंस लाल सहगल 'साधक'

समर्पण

जिनके भक्तिगीतों ने द्रवित किया हृदय मेरा।
उनके पावन चरणों में अर्पित यह उपहार मेरा॥

श्रीमती शान्ति देवी जी अग्निहोत्री
प्रयाग निकेतन जवाहर नगर, दिल्ली-7

॥ ओ३म् ॥

पुस्तक समर्पण

यह पुस्तक प्यारी बहिन पूजनीय शान्ति देवी जी अग्निहोत्री जवाहर नगर, दिल्ली के पावन चरणों में नम्र भाव से स्नेह सहित आदरपूर्वक सादर समर्पित है।

(i) प्रेरक प्रभु की अपार अनुकम्पा से ३२ वर्ष पूर्व एक प्रातः प्रयाग निकेतन के पवित्र यज्ञ-सदन के सामने से मेरा गुजरना हुआ। बहिन जी के भक्ति-संगीत के मधुर स्वरों के आकर्षण ने मुझे उस आंगन में प्रवेश कराया और वन्दनीय गुरुवर महात्मा प्रभु-आश्रित जी के सौम्य दर्शनों, उपदेशों और आशीर्वादों से कृतार्थ कराया, जिसने मेरे जीवन को नया मोड़ बख्शा, क्लब में जाना, अण्डा, मांस, खाना-पीना, सिनेमा देखना आदि सब छूट गया।

(ii) उन्हीं के उदार यज्ञों और नित्यकर्म को देखकर प्रेरणा पा अपने घर में वैसा करने लगा तो स्वर्गीय लाला गणेशदास जी अग्निहोत्री बहिन जी सहित हमारे यहाँ आते रहकर हमारा इस आध्यात्मिक मार्ग पर उत्साह बढ़ाते रहे। थोड़े समय बाद हमने यज्ञ की अखण्ड अग्नि कर ली।

(iii) उन्होंने विजय बेटे से १०१ सामवेद का यज्ञ आरम्भ करवाया; जिसकी पूर्णाहुति पर १०१ यजुर्वेद शुरू करने की प्रेरणा दी जो २ अक्तू० १९८७ को परमात्मा की कृपा से सम्पन्न होने जा रहा है।

iv) **मैंने** मन में इन्हें गुरु धार कर इनके अनुराग, विराग, त्याग, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि के भजनों में कुछ शब्द परिवर्तन कर, एक-आध पद जोड़कर कविता बनाने का अभ्यास आरम्भ किया, दो वर्ष से अब तक जितना सीख पाया हूँ, वह आप इस पुस्तक से जान लें, इसमें भी यही मेरे आदर्श हैं।

(v) कई वर्ष मैंने उनकी सुन्दर, सुगन्धित वेदी पर अपना नित्यकर्म किया और उनके साथ कुछ वेद-यज्ञ भी हर साल हो पाये। उनकी पूर्णाहुति पर वेद-आज्ञा-अनुसार ब्रह्मचर्य आदि के व्रत लिए, जिनका पालन ५० वर्ष की आयु से हो पाया।

ईश्वर के अनुग्रह से वे मुझे अपना भाई स्वीकार कर राखी टीके से अलंकृत करने लगीं। प्रतिवर्ष दोनों अवसरों पर नये भजन और वेदमन्त्र से आशीर्वाद देती हैं। मैं समझता हूँ कि पूजनीय गुरुवर का ज्ञान और माननीया बहिन जी का **कर्मकाण्ड** एवं उनका आज्ञा-चक्र पर तिलक लगाने के आशीर्वादों से उपासना के भाव जगे, जिन्होंने पुस्तक का रूप धारण किया, सो इनकी देन के सम्मान में यह अल्प उद्गारों की तुच्छ भेंट श्रद्धापूर्वक अर्पित है। इसके सिवाय मेरे पास आभार प्रगट करने का अन्य कोई साधन नहीं था।

—हरबंस लाल सहगल 'साधक'

निवेदन

यह लघु पुस्तिका वन्दनीय स्वर्गीय महात्मा प्रभु आश्रित जी की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित की गई है जो १४.२.८७ से २२.२.८७ तक रोहतक में बड़े समारोह से मनायी जा रही है।

इस पुस्तक की भूमिका "वरेण्यम्" के प्रथम भाग में लिख दी गई है। शताब्दी के उपलक्ष्य की जल्दी से यह पुस्तक समय अभाव के कारण अधिक नहीं लिखी जा सकी।

—विनीत
'साधक'

विषय-सूची

सूची वेद-मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(१) रूपक भूमिका

१. संसार में हमें किसी को जानने या मिलने की कामना तब होती है, जब हमें उससे अपनी किसी महती आवश्यकता की पूर्ति करनी होती है, तब उसकी खोज करके उसके साथ अतिप्रेम किया जाता है और उसे पाने के लिए तन, मन, धन से रिझा, लुभा कर वश में करके अपना मनोरथ सिद्ध किया जाता है।

ठीक इसी तरह साधक को जब यह ज्ञान हो गया कि संसार के प्रत्येक सुख में भी परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख, गुणवृत्ति-विरोध दुःख छिपे हैं और उसे पूर्णतः विश्वास हो गया कि सभी आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखों का सर्वथा निर्मूलन और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति केवल परमात्म-साक्षात् करने पर ही सम्भव है। जिसे मोक्ष अवस्था कहते हैं और जिस अत्यन्त लाभ की अवधि ३६००० बार सृष्टियों की उत्पत्ति और प्रलयकाल है। इस परम महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए साधक सहर्ष दुनिया भर के घोर कष्ट खुशी से सहन कर लेता है। उस अपने परम प्यारे प्रेमी से प्रेम करने की उत्कण्ठा, चाह, लग्न, तड़प, बेकरारी, बेचैनी, तिलमिलाहट, व्याकुलता स्वाभाविक होने लगती है और उसकी यह स्थिति बन आती है कि—

प्यार पाने को है रहता ध्यान उसी का हरदम।
याद उसी की सताये और जाये न किसी दम ॥

फिर व्याकुलता ऐसी उसमें बन आती है।
जैसे कामी को वसल की कामना सताती है ॥

या अतिशय प्यासे को पानी की तलब रहती है।
या लोभी की धन पाने की इच्छा नहीं जाती है ॥

यहां कोई वस्तु मुफ्त नहीं मिलती है।
अनमोल के लिए तो मुंहमांगी कीमत देनी पड़ती है ॥

प्रेमी प्रेम के बदले में मिला करते हैं।
उसे पाने वाले सर्व आत्मीय समर्पण होते हैं ॥

२. हम कैसे जानें की वह विधि क्या है। एक शायर का पद याद आता है—

"मीर बन्दों से काम कब निकले।
जो कुछ माँगना है खुदा से माँग ॥"

झट सामवेद खोला है, महर्षि ने आरम्भ में यह गाया है:—

महा ऋषि-भारद्वाज, देवता-अग्नि, छन्द-गायत्री

ओ३म् आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

—(ऋ० ६, १६-१० सा० १, ६६०)

अर्थ:—

अग्ने =हे ज्योति स्वरूप, ब्रह्मअग्ने !
गृणानो=(मैं) स्तुति-वचनों से आपका गुणगान कर रहा हूँ।
आ याहि=आप आइए, दर्शन दीजिए, पधारिए।

वीतये=ज्ञान, प्रकाश, आनन्द और
हव्य दातये=वाञ्छनीय मोक्ष हवि देने के लिए
नि होता=हे महादानी !
सत्सि बर्हिषि=मेरे हृदय आसन पर निरन्तर विराजमान होवें।

कविता में अर्थ:—

हे ज्योतिर्मय स्तुतियों के भाजक प्रभु आओ।
गहन अन्धेरा छाया भीतर ज्ञान की ज्योति जगाओ ॥१॥
क्या गा सकता तेरी महिमा शब्द नहीं कुछ पास मेरे।
हे अत्यन्त महादानी, गाऊँ कैसे गुण तेरे ॥२॥
आओ प्रीतम शीघ्र आओ, सुन्दर छवि दर्शाओ।
युगों युगों से लगी हुई है, मन की प्यास बुझाओ ॥३॥

द्रवित हृदय में श्रद्धा बिछी है इस पर शोभा पाओ।
इतनी विनती और है भगवन् ! लौट कर फिर न जाओ॥

मन्त्र के आधार पर प्रार्थना:—

प्रभु विषयों का न रहे ये डेरा।
दूर करो जो तिमिर घनेरा॥ १ ॥

अज्ञान का पर्दा हटा दो मेरा।
दर्शन होता नहीं जो तेरा॥ २ ।

ऐसा ला दो भाग्य सबेरा।
बन जाऊँ जो तेरा चेरा॥ ३ ॥

तब होवे फिर हृदय बसेरा।
खुशियों का बँध जाए सेहरा॥ ४ ॥

३. प्यारा प्रीतम तो उसी की वाणी से रिझाया और मनाया जाता है, यादों और फरियादों की हवियाँ देकर, श्रद्धा-भक्ति-प्रेम का दीप जलाकर।

वेदमाता का एक और उपदेश याद आता है कि प्यारे पिता का आह्वान कैसे किया जाता है ? सो अपने हृदय के सितार के तारों को समस्वर और झंकृत कर व्याकुलता भरे हृदय से मीठे स्वर में गाने लगता हूं—

देवता-वरुण

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युरा चके

—(य० २१-१)

अर्थ:—

वरुण=हे वरणीय प्रभु !
मे इमं=मेरी इस
हवम्=विनीत प्रार्थना हवि: को कृपया ग्रहण करें।
श्रुधी=सुनें, स्वीकार करें (और)
अद्य=आज ही
अवस्युरा=निज रक्षा में लें।
च मृडय=और सुखी, आनन्दित करें।
त्वां आ चके=इसलिए आपको स्तुति-वचनों से नम्रता-पूर्वक पुकारता हूं।

अर्थ कविता में:—

हे वरुण ! कब से तेरी शरण पड़ा, ये वत्स तुझे पुकार रहा।
प्रतीक्षा करते-करते है आशा का दामन छूट रहा।।

आज हो मेरो सुनो पुकार, विनय ये आपसे करता हूं।
रक्षा में लो सुखो करो, नहीं विलम्ब सह सकता हूँ॥

और मन्त्र के आधार पर:—

तुम ही मेरा यौवन शृंगार भी तुमही हो।
तुमहो मेरा सितारा, सौभाग्य भी तुमहीं हो॥

तुम ही हो मेरे साधन और साध्य भी तुम ही हो।
तुम ही हो मेरे पूजन, आराध्य भी तुम ही हो॥

नहीं कुछ भी मुझको परवाह गर बिगड़े सब ज़माना।
यदि आप रूठ जाओ, फिर कहां मेरा ठिकाना॥

क्या अपनो व्यथा सुनाऊँ, कैसे तुझे मनाऊँ।
नहीं जानता विधि हूँ कैसे तुझे मैं पाऊँ॥

४. प्यारी (वेद) माता को मेरी वेदनाभरी प्रार्थना पर तरस आया, उसने सुझाया—

'सन्ध्या में रोज़ नहीं पढ़ते हो—

'उदु त्यं जात वेदसं......'

जिस में है, कि परमात्मा की पताकाएं उसका परिचय दे रही हैं।

हाँ माँ ठीक कहती हो, अब तक भूला था—

वैसी दृष्टि नहीं बनायी, इतनी आयु यों ही गंवायी॥

अब ज्ञान के आलोक में मैं उसे गाता हूं:—

देवता-सूर्य, छन्द-गायत्री

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

(ऋ० १-५०-१, य० ७-४१, ३३-३१, सा०-३१, अर्थ० १३-२-१६, २०-४७-१३)

अर्थः—

उदुत्य=निश्चय से उस उत्कृष्ट परमात्मा को (जो)

जात वेदसं=वेद ऋचाओं का प्रकाशक, सर्वज्ञ, सब में विद्यमान, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी,

देवं=सब देवों का देव, दिव्य गुणों से युक्त, परम सुखों के दाता

विश्वाय सूर्यम्=सम्पूर्ण ज्ञान कृतियाँ

केतवः=(उस) परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान कराने वाली झण्डियाँ-पताकायें हैं (जो)

वहन्ति=उसका परिचथ दे रही हैं, ज्ञान करा रही हैं।

दृशे=और उसका दर्शन करा रही हैं।

अर्थ कविता में—

अखिल ब्रह्माण्ड में सर्व व्यापक आप जगत् के स्वामी हो।
दिव्य गुणों से युक्त विधाता सबके अन्तर्यामी हो॥
सकल पदार्थ विश्व के सारे, तेरा परिचय देते हैं।
देव तुम्हारे सभी नज़ारे, तेरी ओर ले जाते हैं॥

५. इस मंत्र में दो उपमा अलंकार हैं एक 'जातवेदसम्" त्रिवेद ऋचायें, जिससे परमात्मा का स्वरूप उसके गुण, कर्म, स्वभाव, उनके साक्षात् करने की विधि, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि हैं, जो ब्रह्म से मिला देती है। जैसे पहाड़ों के स्रोत से निकली हुई बहती नदियाँ समुद्र तक पहुँचा देती हैं।

दूसरे यह कि प्रकृति का अणु-अणु, ज़रा-ज़रा. रोम-रोम प्रत्येक दृश्य जैसे गगन में सूर्य, चन्द्र, तारा गण, नक्षत्र। अन्तरिक्ष में मेघ, वर्षा, वायु, बिजली और पृथ्वी पर वन,

उपवन, ऋतुयें, जीव-जन्तु, दवी-कोप-बाढ़, भूकम्प आदि। यह सब केतु (पताकायें) समान जगत स्वामी को दर्शाते हैं। जैसे—शासकों के ध्वज उस-उस राष्ट्र का परिचय देते हैं।

केतु क्या हैं ? इन नज़ारों को कैसी भावना और दृष्टि से देखें ? विश्व आत्मा से वियुक्त जीवात्मा अपने पुरातन विराट रूप में कैसे लौटती है, एकाकार, मिलन करती है ? इसे समझाने के लिए पार्वती और शिव-मिलन की सच्ची कहानी से बढ़ कर मुझे और कोई साधन दृष्टि-गोचर नहीं होता। निश्चय ही वह आत्मा और परमात्मा के प्यार और प्रिय-मिलन का अति सुन्दर अलंकार है। इस के क्या साधन हैं ?

६. सबसे पहले मिलन की उत्कृष्ट इच्छा विश्वास पूर्वक बने और उस प्रियतम से हार्दिक प्रेम प्यार की जोत जगे। यह वेद ज्ञान का पार्ट नारद मुनि जी महाराज इस नाटक में अदा करते हैं।

इसे क्रियात्मक रूप देवी पार्वती (पवित्र जीवात्मा) कैसे जप, तप, यज्ञ, योने-अभ्यास आदि साधनों से देती है, यह इस रूपक से जानें।

वह साधन क्या थे ?

पहले दिन से ही उसकी प्रत्येक इन्द्रियाँ शिव-साधना में लग गईं।

(i) आँख से हर वस्तु में शिव का रूप और सिवाय उस (शिव) के और कुछ नज़र न आना।

(ii) कानों से शिव की ही दिव्य वाणियाँ और उसके संगीतों का आभास होना और सुनाई देना।

(iii) मुख से सिवाय शिव नाम के और उसकी महिमा-गायन के कुछ न निकलना।

(iv) हर साँस और प्राण की धड़कन में शिव नाम का मौन जप होना।

(v) मन में सिवाय शिव-संकल्प के और किसी का संकल्प न आना।

(vi) चित्त में शिव का ही आठों पहर सोते-जागते, चलते-फिरते चिन्तन रहना।

(vii) मस्तिष्क में नित्य नए-नए शिव-सम्बन्धी विचारों का जन्म लेना।

(viii) शिव-मिलन के विरह की व्याकुलता में अहंकार का सजल नैनों के जल में बह जाना।

(ix) हृदय-मन्दिर को शिव की अखण्ड स्मृति की ज्योति से सदा जगाए रखना।

(x) बाह्य और अन्तःकरण का रोम-रोम, हर क्षण शिव की पुकार से रोमांचित रहना।

(xl) अपनी सुध-बुध को शिव में ही खोए रखना।

७. पहले वे एक वार भोजन खाती रही, फिर कन्द-मूल पर आई, फिर घास के तिनकों पर आई तब उनका नाम 'अपर्णा' हुआ। फिर वह कुछ दिन जल पर रही, वाद में कुछ दिन वायु ही उनके जीवन का आधार रहा।

उसके तप का वर्णन किन शब्दों में करूं, नहीं जानता। उसने बर्फ़ानी हवायें, कड़कती बिजलियाँ, गरजते बादल, कंकरी-आँधियाँ, दैवो-तूफान शिव की कृतियाँ समझ कर

खुशी से झेल लीं। इस घोर तप से स्वाभाविक था कि शिव जी महाराज का कोमल हृदय द्रवित होता, उनकी समाधि टूटती और वह स्वयं प्रकट होते (ऐसे जैसे स्विच दबाने पर प्रकाश तत्काल हो जाता है)। और उसे आकर भुजाओं के आलिंगन में ले हृदय से लगाते। ऐसा ही हुआ।

(८) उस महान तप का जब चिन्तन बन आता है तो कठोर हृदय भी पिघल जाते हैं। नैनों से जल बह आता है। सम्पूर्ण अन्तःकरण धुल जाता है, मस्तक उस दिव्य आत्मा के चरणों में श्रद्धा से झुक जाता है और आत्मा ब्रह्म स्थित हो जाती है। यह अवस्था बनाना, मेरा इस रूपक का ध्येय है। परमात्मा करे कि मेरा यह अलप प्रयास सफल हो।

आओ अब इसे हृदय के अन्तराल से सेवन करें और परम प्यारे कल्याण स्वरूप शिव जी से महा मिलन बने और वरेण्यम् की सिद्धि हो।

यही 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' की व्याख्या है।

—**साधक**

।।ओ३म्।।

(२) शिव-पार्वती रूपक

१. त्रेता युग में हिमाचल के राजा गिरिराज थे । रानी मैना देवी उनकी धर्मपत्नी और पार्वती उनकी इकलौती सुपुत्री थी । राजा-रानी आपस में चर्चा कर रहे थे कि 'अब लड़की जवान हो गई है अतः इसके लिए कोई वर-घर ढूंढना चाहिए ।' इतने में देवराज नारद मुनिजी महाराज का शुभागमन हुआ । उन्होंने उनसे इस बारे में प्रार्थना की कि "कोई योग्य सम्बन्ध बताएँ" । मुनि जी ने कहा कि 'इस कन्याका वर तो आदिकाल से ही निश्चित चला आ रहा है । जो अति सुन्दर, अरुण-वर्ण, देदीप्यमान स्वरूप, अजर-अमर, सदा युवा, योगी, तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी, जिनकी शोभा निराली और अद्‌भुत अवर्णीय है; वह मौन, समाधि में कैलाश पर्वत पर रहते हैं ।

२. पिछले जन्म में इनका नाम सती था और महाराज दक्ष प्रजापति तथा प्रसूति माता की यह सुपुत्री थी । शिवजी महाराज को इसने तब स्वयम्बर में वरण किया था । पिता उस संयोग से खुश नहीं थे; क्योंकि वह (शिवजी) राजकुमार या राजा नहीं थे । इस सम्बन्ध में जब उनसे पूछा गया तो शिवजी ने उत्तर दिया कि मैं इन्द्रियों रूपी प्रजा का स्वामी हूं और अपने आत्म-स्वराज्य में संतुष्ट रहता हूँ । इस पर सती बहुत खुश हुई और उनके साथ विवाह हो गया ।

कुछ समय बाद मगध देश के राजा ने बृहद् यज्ञ कराया। भगवान् शिवजी उसके ब्रह्मा थे। दक्ष प्रजापति जब उस यज्ञ में गए तो शिवजी उनके सम्मान में नहीं उठे; क्योंकि वह ब्रह्मा के आसन पर आसीन थे। दक्ष ने इसे अपना अपमान समझा और वह उनसे रुष्ट हो गए। वहां से आकर उन्होंने अपने यहाँ चारों वेदों का ब्रह्म पारायण यज्ञ रचाया।

३. सती ने एक दिन देखा कि ऊपर आकाश में बहुत से विमान जा रहे हैं। उसके पूछने पर शिवजी महाराज ने बताया कि यह तेरे पिता के चतुर्वेद महायज्ञ पारायण में जा रहे हैं। उन्होंने सबको निमंत्रण भेजा; पर हमें नहीं बलाया है। इस पर सती बहुत दुःखी हुई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि 'नाथ ! मुझे आज्ञा दें तो मैं चली जाऊं। अब तक मिलने नहीं जा सकी शायद वह नाराज़ होंगे।' शिवजी महाराज ने कहा कि 'बिना बुलाए तुझे नहीं जाना चाहिए। इसमें बड़ा अनर्थ होगा।' सती ने ज़िद्द की तो महाराज ने दो गण साथ देकर भेज दिया।

४. वहां पहुंचकर देखा कि यज्ञ में शिव जी को कोई स्थान नहीं दिया और बुलवा भी नहीं रहे। इस पर उसे बहुत दुःख हुआ। अतः इस शोक में प्यारे पतिदेव से उनकी इच्छा की अवहेलना के लिए क्षमा याचना करती हुई सती एक कुण्ड की प्रज्वलित अग्नि में लीन हो गयी, यह कहते हुए कि 'हे देव ! अगले जन्म में भी आपकी दासी बनूं, यही मेरी अन्तिम अभिलाषा है'। अतः इनका उनके साथ जन्म-जन्म का सम्बन्ध है। फिर महाराज गिरिराज ने निवेदन किया तो "कृपया इसे सम्पन्न करायें।"

देवऋषि बोले कि उन्हें पाने के लिए पार्वती को स्वयं

साधना करनी होगी और वेद-स्वाध्याय, गायत्री-जप, सन्ध्या, योग-अभ्यास, यज्ञ-अनुष्ठान, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, ज्ञान, कर्म, उपासना इत्यादि तपोमय जीवन की सब विधियाँ पार्वती को समझा कर बोले—"इस नित्यकर्म को कभी न छोड़ना। अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, अनुराग, वैराग्य से जब समर्पण बन आयेगा तो वह भक्त-वत्सल, करुणा-सागर, सौम्य-स्वभाव शिव जी थोड़ी-सी अराधना से शीघ्र प्रसन्न हो स्वयं आकर तुम्हारा वरण करेंगे। उपासक यदि एक कदम चले तो वे हज़ार कदम बढ़ाकर उसे मिलते हैं। उनके विषय में कहा जाता है कि—

चुपके-चुपके जो दिल से दुआ करते हैं,
निश्चय शिवजी उसे स्वीकार किया करते हैं।

उसकी रहमत से कोई मायूस न होवे हरगिज़,
यह तो इन्सान है वह चींटी को भी सुना करते हैं॥

फिर उपदेश दिया—

ढूंढ लेना हृदय गुफा में सत्य का दीपक जला,
विवेक के प्रकाश में प्रीतम नज़र आ जाएगा।

यदि काम इस पर न बने तो चली जाना—

"पर्वतों की घाटियों में नदियों के संगम जहां,
अपने प्रीतम से मिलोगी लगन होगी जब महां॥

ऐसा समझाकर देवऋषि नारद जी प्रस्थान कर गए।

५. मुनि जी से शिव-महिमा सुनकर पार्वती को उनसे अतिशय प्रेम हो गया और उन्हें पाने की उत्कट इच्छा बन आयी। उनके कथनानुसार स्वाध्याय, सन्ध्या, जप, यज्ञ, योग-अभ्यास इत्यादि प्रतिदिन बड़ी श्रद्धापूर्वक करने लगी,

साल बीत गया, अभी तक प्रीतम के दर्शन नहीं हुए। मुनि जी का अन्तिम उपदेश याद आया—

पर्वतों की घाटियों में नदियों का संगम जहां।
अपने प्रीतम से मिलोगी, लगन होगी जब महां॥

६. चुनांचे चैत्र की पूर्णमासी का यज्ञ करके प्रीतम की खोज और मिलन की तड़प लिये घर से निकल पड़ती है।

हिमालय की ओर, और रास्ते में गुनगुनाती जाती है—

"प्रीतम मेरे चल रही हूँ, ले उम्मीदों का सहारा।
मिल कहीं आलोक जाए, पथचिन्हों का तिहारा॥

मौन होकर प्रीतम के ध्यान में चलती रहती है और मुग्धभाव से फिर बोल निकलते हैं—

"आशा का दामन पकड़, शिवजी मिलन को आ रही।
जिस तरफ पाया पता तेरा, उधर हूँ जा रही॥

पुनः मौन ध्यान में कदम बढ़ते हैं और रुद्ध कंठ से स्वर निकलते हैं—

अरमानों की झोली लिए, आंसू भरे दो नैन।
व्याकुलता हृदय धरे, ढूंढ रही दिन-रैन॥

जैसे दहकती हुई रेत प्यास की व्याकुलता को बिखेरती है, वैसे ही वह शिव मिलन की अखंड चाह और तड़प को लिये हिमालय के दामन में गंगा के तट पर एक रमणीक सुन्दर स्थान पर पहुंच कर बैठ जाती है और भगवान् के अति धन्यवाद सहित हृदय से भाव निकलते हैं:—

"यह विशाल पृथ्वी माता का कितना सुन्दर बिछौना है। तटहीन नीला आकाश कितनी प्यारी छत है। विस्तृत

दिशाएँ कितनी विचित्र दीवारें हैं। यह सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश सब देव मेरे सहचर हैं"।

दिवस का अवसान हो गया, सन्ध्या धरती पर उतर आई। थकी-मान्दी पार्वती शिव ओ३म्! शिव ओ३म्!! शव ओ३म्!!! कहती हुई निद्रा की गोद में चली जाती है।

७. हर रोज़ मौन भरी प्रभात में उठकर स्नान कर, अपना नित्यकर्म करके, स्तुति, उपासना, प्रार्थना के गीत गाती रहती केवल कन्द-मूल खाती। कुछ दिन बाद ध्यान-समाधि में रह जल का ही सेवन करती रही।

समर्पण का आरम्भ पूर्ण त्याग से

८. अगले दिन मौन भरी प्रभात में उठकर जप के पश्चात् सर्वभाव से समर्पित होकर गाती है:—

नाथ मैं इस जा आकर बैठ गई,
अब रहा न और ठिकाना है।
न और कहीं अब जाना है,
केवल शिवजी तुम्हें पाना है॥ १॥

सब रिश्ते नाते तोड़ चुकी,
दुनिया का सब कुछ छोड़ चुकी।
जीवन को अपने मोड़ चुकी,
बस तेरी हूं अब हो चुकी॥ २॥

तेरे प्यार में सब कुछ खोया है,
भावों का हार पिरोया है।
निज अन्तःकरण को धोया है,
तेरे सपनों से संजोया है॥ ३॥

मेरा मन-मन्दिर है दीप बना,
श्रद्धा के घृत से इसे भरा।
और प्रेम की बाती डाली है,
विरह अग्नि से प्रज्वलित किया ।। ४ ।।

यह हृदय कब से सूना है,
प्रभु आओ इसे आबाद करो।
अब और न मुझको तरसाओ,
यह विनती मेरी स्वीकार करो ।। ५ ।।

तुम जन्म-जन्म के हो स्वामी,
मैं सदा सदा से हूँ दासी।
थी भटक गई अब क्षमा करो,
और पुनः बनो मेरे वासी ।। ६ ।।

ऋषि-ज्ञानी ध्यानी कहते हैं,
कि शिव जी बड़े दयालु हैं।
जो द्वारे उनके जाते हैं,
मन वांछित फल को पाते हैं ।। ७ ।।

मुरादों से दामन भरते हैं,
कभी न खाली आते हैं।
चाहना जो भी रखते हैं,
सब पूरी उसे वे करते हैं ।। ८ ।।

मेरी तो केवल आस यही,
इक बार तुझे पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ जगती भर का,
सब प्यार तुम्हारे चरणों में ।। ९ ।।

और वियोग सहन नहीं होता अब,
दो दर्शन प्रभु निहाल करो।
युगयुग से अपनी बिछड़ी को,
गले लगा स्वीकार करो ॥ १० ॥

समर्पण के इन उद्‌गारों में लीन होकर पार्वती बहुत देर के लिए समाहित हो जाती है । पुनः गायत्री-जप करने बैठ जाती है और ऐसी प्रार्थनाएँ करती-करती प्यारे शिव की याद में निद्रा की ओढ़नी लेकर शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! उच्चारण करती सो जाती है।

६. जिज्ञासा के प्रश्नों की झलकः—

प्रातः एक उद्यान में चली जाती है। माली उसे नाना प्रकार के पुष्प और फल लाकर भेंट करता है । हैरान होती है कि इन मोतिया, चमेली, गुलाब, गेन्दा आदि पुष्पों की नयनाभिराम पंखुड़ियों में यह कोमलता, रंग, रूप, सुगन्धि, किसने भरी ? इन फलों के रस में भिन्न-भिन्न ज़ायके किसने, कैसे डाले हैं ? किसी बीज का स्वाद फीका या कसैला है; परन्तु फल कितना मीठा और स्वादिष्ट है । अनार को चीरती है, विस्मित होती है कि इसके भीतर इतने सुन्दर ढंग से मोतियों की तरह दाने किसने संजोये हैं। इस संतरे की हर फांक में किसने नन्हें-नन्हें बीज भरे हैं। वट वृक्ष के ज़रा से बीज को देखकर मुग्ध भाव से सोचने लग जाती है कि यह कैसे विकसित होकर अंकुर के रूप में धरती को बींध कर निकला और बढ़ते-बढ़ते इतने महान् विशाल वृक्ष के रूप को प्राप्त हुआ। यह किसका कमाल है ? किसका जमाल है ? किसका जादू है ?

इस सोच में मग्न होकर अपनी सुध-बुध खो बैठती है। कुछ घण्टे बीत गए। आँखें खुली; फिर हैरान हो गई। जब बैठी थी तो धूप थी, अब छांव किसने ला दी ? दिन कैसे ढल गया ? रात कौन ला रहा है ? फिर ऐसे विचारों में डूबी हुई अपनी कुटिया में आकर शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! कहती सो जाती है।

१०. **अगले दिन** और दृश्य उसे अचम्भे में डालते हैं और विभिन्न नवीन प्रश्न उठते हैं।

(१) इस रात्रि के अन्धकार को विलीन कर नीले आकाश की पूर्व-दिशा में किसकी ललित लालिमा का सिन्दूर स्वरूप उषा के माथे का शृंगार बनता है ?

(२) ये ओस के मोती घास पर कौन बिखेरता है ?

(३) ज्योतिर्मय सूर्य भगवान् की चमकीली किरणों का उज्ज्वल और उष्ण प्रकाश कौन लाता है ?

(४) इन मोरों के नृत्य में किसकी कला का प्रदर्शन है ?

(५) इन खेतों की हरियाली में किसका हरा आंचल लहरा रहा है ?

(६) ये रवि-शशि किसके सुनहरे कुंडल हैं ?

(७) इस गगन आंगन में झूमते हुए बादलों की मस्तानी चाल किसकी है ?

(८) इन रह-रह कर बरसते जल-कणों को कौन गिरा रहा है ?

(९) द्यौः, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र इनको अपनी-अपनी परिधि में निश्चित मार्ग पर कौन चला रहा है ?

(१०) निरन्तर बहती हवा के झोंकों में सरसराहट किसकी है ?

(११) पेड़ों से लिपटी लताओं के आलिंगन में किस का प्यार छुपा है ?

(१२) रमणीय ऋतुओं के आगमन में किसका कमाल है ?

(१३) दिन को दोपहर, शाम और रात में कौन परिवर्तित कर रहा है ?

(१४) सन्ध्या की पुलकित रजनी में किसकी लालिमा है ?

(१५) रात्रि की ऊँचे तटहीन गगन-आंगन में चमकते, दमकते, मटकते-टिमटिमाते तारों की सजी दीपमाला किसके स्वागत में है ।

(१६) विस्तृत आकाश की स्वच्छ नीलिमा किसकी देन है ?

(१७) प्रत्येक उत्पत्ति के विकास में किसका स्निग्ध भरा हाथ है ? पवन को निरन्तर कौन बहा रहा है ?

(१८) गगन चुम्बी पर्वतों पर बर्फ के पहाड़ किसने जमा दिये ?

(१९) पहाड़ी स्रोतों से निकली नदियों के अथाह जलराशि में किसका वेग है ?

(२०) यह दिग्-दिगन्त तक फैले हुए अथाह गहरे सागर किसकी महानता दर्शा रहे हैं ?

(२१) सूर्य का उष्ण प्रकाश और चन्द्रमा की शीतल चान्दनी कौन से वैज्ञानिक का आविष्कार है ?

(२२) नभ-मण्डल की यात्री चन्द्र-किरणों की सौम्यता में सोम कौन भर रहा है ?

(२३) पत्ते-गत्ते, कण-कण, ज़रे-ज़रे में कौन स्वर्णिमा बनकर चमक रहा है? विस्तृत अलौकिक रचना की प्रत्येक कृति में किस शिल्पी का चमत्कार है?

(२४) प्रत्येक आनन्ददायक दृश्यों में किसका आनन्द किलोल कर रहा है?

(२५) हर सौन्दर्य में किसका लासानी जलवा मुखरित हो रहा है?

(२६) इन अनन्त ब्रह्माण्डों, नक्षत्र-मण्डलों की लयपूर्ण गति-विधि किसके अमृतमय दिव्य हाथों में है?

(२७) समस्त प्राणियों के जाति, आयु और भोगों का न्याय-पूर्वक कर्मफलदाता कौन है?

(२८) कहीं-कहीं भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, किसके दैवी कोप हैं?

(२९) इस विशाल सृष्टि की रचना, स्थिति, प्रलय का अधिष्ठाता कौन है?

इन प्रश्नों की दुनिया में खोकर ऐसा विचार करते-करते वह भाव-विभोर हो शिव ओ३म्! शिव ओ३म्!! शिव ओ३म्!!! कहती योग-निद्रा में चली जाती है और फिर जब ब्रह्ममुहूर्त्त में ज्ञान के सवेरे में जागती है तो रहस्यों को जानते हुए अकस्मात् कह उठती है—

३१.

रहस्योद्घाटन

हे नाथ! सब राज़ मैंने जाना है।
ज़र-ज़रें में तेरा रूप पहचाना है।

खिली कलियों में है देखा तेरा मुस्काना ।
हर फूल में हँसते तुझे पाया है ॥

उषा की लाली में है सुर्खी तेरे चेहरे की ।
हर अदा में तू इठलाता नज़र आया है ॥

सर्वथा, सर्वदा, सबमें, सब ओर तेरी ही विचित्र लीला है। तेरा ही अत्यन्त लासानी, लाफ़ानी, लाज़वाल जलवा है, नूर है, ज़हूर है, आभा है, शोभा है । यद्यपि तुझ अवर्णनीय का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि देखने वाली दृष्टि को वाणी नहीं मिली कि मैं तेरा यथार्थ वर्णन और स्तवन कर सकूं केवल इतना कह सकती हूँ कि आप अगम्य हैं, अगाध हैं, अगोचर हैं। आप चित्रम्-विचित्रम्-वरेण्यम् हो। आप दर्शनीय, सुदर्शनीय, विचर्षणीय हैं। मस्ती में शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! कहते-कहते वह ध्यान समाधि में चली जाती है।

१२. **अगले दिन** स्वर्णीय प्रभात में अपने प्यारे इष्ट देव को सम्बोधन यूं करती है—

(१) हाँ मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि प्रकृति का अणु-अणु तेरी ओर इशारा कर रहा है।

(२) हर शब्द में तेरी झंकार है।

(३) प्रत्येक दृश्य में आप विद्यमान हो ।

(४) हर रूप में तेरी छवि है।

(५) हर रस में तेरी रसना है।

(६) हर गंध में तेरी सुगन्धि है।

(७) हर स्पर्श में तेरा आभास है।

(८) हर सौन्दर्य में तेरी झलक है।

(९) हर स्वर में तेरी निराली तान है।

(१०) हर प्रकाश में तेरी चमक है।

(११) हर ज्योति में तेरा नूर है।

(१२) हर दीप्ति में तेरी आभा है।

(१३) हर नक्षत्र में तेरा आलोक है।

(१४) हर अग्नि में तेरा ताप है।

(१५) हर ऋतु में तेरी अरुणाई है।

(१६) हर जलवे में तेरा जमाल है।

(१७) हर क्रांति में तेरा कमाल है।

(१८) हर वस्तु मे तेरा वास है।

यह सब झंडिया होकर तेरा पता बता रही हैं, तेरी राह दिखा रही है।

इस तरह प्रीतम की स्तुति करते-२ अपनी प्यासी आँखों द्वारा इस रूप सुधा के पान से हृदय में भक्ति भाव और आनन्द की तरंग में उमंग लेती हुई शिव ओ३म्! शिव ओ३म्!! शिव ओ३म्!!! कहती हुई तल्लीन हो जाती है।

१३. (I) दिव्य सगुण रूप

अगले दिन उषा की सुनहरी वेला में जाग कर श्रद्धा से धरती, आकाश और दिशाओं को नमस्कार करती है फिर तरंगित हृदय से रह-रह कर ऐसे भाव प्रकट होते हैं—

यह महान् द्यौः मेरे प्रीतम का सुन्दर भाल है, सुनहरा मस्तक है। यह देदीप्यमान चाँद और सूर्य उसके चमकीले

नयन हैं। यह नवीन दिन और रात उसकी सबल भुजायें हैं। दिशायें उसके कान हैं। भूमि और गगन के बीच का पोल भाग उसका विशाल मुख है। यह चंचल वायु उसके निर्विश्राम प्राण हैं। यह विस्तृत पृथ्वी उसके पवित्र चरण हैं। ऐसे चिन्तन और विचारों में डूबी हुई प्रियतम के विराट् रूप सराहती हुई शिव ओ३म्! शिव ओ३म्!! शिव ओ३म्!!! कहती हुई भाव समाधी में चली जाती है

(II) दिव्य ज्योतियां

१४. कभी-कभी ध्यान के बाद ऐसे वचनामृत झरते हैं—
मेरे प्यारे प्रीतम की उत्कृष्ट ज्योति कितनी अद्भुत रूपों में मुखरित हो रही है। सूर्य के उष्ण प्रकाश में, चन्द्रमा की शीतल चांदनी में, तारों की रिमझिम टिमटिमाहट में, विद्युत की निराली चमक में, अग्नि के ओजस्वी तेज में, जुगनू की विचित्र दमक में सब जगह उसी का नूर बरस रहा है। यह सब भिन्न-भिन्न उसी की सुन्दर ज्योतियाँ जगमगा रही है ऐसे प्रेम में आतुर हो शिव ओ३म्! शिव ओ३म्!! शिव ओ३म्!!! कहती हुई मौन हो जाती है।

(III) दिव्य रंगीनियां

१५. फिर थोड़ा अन्तरध्यान होती है, हृदय सेश्रद्धा और प्रेम भरे वाक्य निकलते हैं—

वह विचित्र कलाकार कितने सुन्दर, सुहावने, निराले, अनोखे रंग भर रहा है, वसन्त ऋतु के शृंगार में, प्रभात की गुलाबी उषा की विचित्रता में, संध्या की छटकती लालिमा में, पुलकित रजनी की अरुणाई में, सुधा भरे फूलों की

पंखड़ियों के रंगों में, मोर, तितली, पक्षियों के रंग-बिरंगे पंखों में, घने-काले मेघों में, सतरंगे इन्द्र धनुष में –

यह सब मेरे प्यारे इष्ट की ही अभिराम रूप राशि लहरा रही है ! शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् ! कहते आवाक् ही जाती है ।

(IV) दिव्य स्वर

१६. पुनः ध्यान स्थिति से और प्रेम-उद्गार उद्बुद्ध होते हैं। वह मेरा चतुर गवैया भिन्न-भिन्न स्वरों में कैसे विचित्र गीतों की निराली तान छेड़ रहा है, सुन्दर कड़ियां जोड़ रहा है। यह पक्षियों की चहचहाहट, मुर्गे की बाँग, कोयल की प्यारी कूक अस्ताचल से आई पपीहे की पीउ-पीउ पवन के झंकोरे, लहराते वृक्षों की सरसराहट, आकाश में अलसाए मेघों की गर्जना, चंचल बिजली की कड़क, पर्वत-शिखर से बहते हुए स्वच्छ जल भरे निर्झरों की झर झर, बहती नदियों की कल-कल, प्रशान्त वातावरण के मौन भरे सन्नाटे की विचित्र झंकार, कैलाश पर्वत के पाषाण खंडों का भेदन करते आए सुरीले स्वर कवि के कलाप विरहन के आलाप यह सब मेरे मनहर प्यारे देव के मधुर संगीत का सुरमयी वीणा-वादन है। इनमें मेरे प्रीतम-वियोग की व्यथायें निहित हैं अथवा विरह की व्याकुलता प्रतिध्वनित हो रही है ।

मन में आता है कि मैं भी अपने कंठ के स्वर इन दिव्य स्वरों में मिला दूं, सम स्वर कर दूं । पर मेरे स्वरों में वह कोमलता नहीं, वह माधुर्य नहीं, वह समता नहीं, वह जादू नहीं, वह रोमांच नहीं, वह आकर्षण नहीं । ऐसा कहते-कहते प्रशंसा की मुद्रा में लोन हो जाती है ।

यह सब प्रकृति के उत्कृष्ट नज़ारे ही उसके संगी, साथी, हमजोली और सहचर हैं। जिन्हें अपने प्रिय देव की विचित्र प्रदर्शनी के रूप में निहारती है। ऐसे भक्तिमय भावों में बहती हुई, खोई हुई, डूबी हुई शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! उच्चारण करती करती भाव समाधि में चली जाती है। उसकी पलकों में नींद भर आती है, वह सो जाती है।

१७. अगले दिन की सोमये प्रभात में इन्हीं विचारों में जागती है तो हृदय से कविता के ये उद्गार मुखरित होते हैं—

१. हे नाथ तुम्हारी महिमा का, जब भी चिंतन बन आता है।
अनुभव में जो आता है, वह कहा नहीं सब जाता है।।

२. नयन सजल हो जाते हैं, उन्माद ऐसा छा जाता है।
निष्प्राण मानो बन जाती हूँ और कण्ठ रुद्ध हो जाता है।।

३. मन मौन अवस्था पाता है, चित्त चिंतन सभी गँवाता है।
विवेक बुद्धि में आता है, अहंकार विलीन हो जाता है।।

४. दिव्य गीत सुनाई देते हैं, ऐसी मस्ती छा जाती है।
दिव्य दर्शन होने लगते हैं, ऐसी अनुभूति होती है।।

५. रस-गंध-स्पर्श की दिव्यता से, प्रेम हृदय भर आता है।
रोमांच ऐसा छा जाता है कि श्रद्धा से मस्तक झुकता है।।

६. आप ऐसा मुझको भाते हो, कोई और नज़र नहीं आता है।
देव ! यही अवस्था सदा रहे, दासी की यही अभिलाषा है।।

इन्हीं उद्गारों और विचारों में तल्लीन हो 'शिव ओ३म्'। 'शिव ओ३म्। शिव ओ३म्।' कहती हुई समाधि में चली जाती है।

१८. श्रद्धा और प्रेम भरे हृदय से प्रतिदिन इसी तरह अपने प्रियतम को मीरा की भाँति नाच-नाच व गा-गा कर रिझाती रहती है।

अपने नित् कर्म के पश्चात् एक दिन फिर उसके मधुर कंठ से ये बेबसी के स्वर निकलते हैं।

१. हे नाथ तुम्हारे भक्त उपासक कई ढंग से आते हैं।
पूजा की सामग्री वह ! विविध परकार की लाते हैं॥

२. मैं निर्धन, प्रेम भरा हृदय ले, खाली हाथ चली आई।
समर्पण की नहीं विधि जानती, तो भी देव चली आई॥

३. धूप-दीप नैवेद्य नहीं, अर्पण को प्रसाद नहीं।
हाय ! गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं॥

४. कैसे रिझाऊँ प्रीतम तुमको, मुझ पर कोई श्रृंगार नहीं।
गीत भरे हैं आँसू मेरे और मेरे कुछ पास नहीं॥

५. कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, स्वर में मेरे माधुर्य नहीं।
मन के भाव प्रकट करने को, वाणी में चातुर्य नहीं॥

६. तेरी दया हो केवल बरसे, और मेरी कोई आस नहीं।
क्षमा याचना करती हूँ, और मेरी फरियाद नहीं॥

७. पूजा और पुजापा स्वामी, इसी पुजारिन को समझो।
दान, दक्षिणा और न्यौछावर, इसी भिखारिन को समझो॥

८. चरणों में अर्पित हूँ तेरे, आओ शिव जी स्वीकार करो।
हूँ मैं वस्तु तुम्हारी भगवन्, ठुकराओ, न प्यार करो॥

तदुपरान्त प्रेम विभोर हो शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् कहती प्रीतम के ध्यान में समाहित हो जाती है।

(इस कविता का अधिक अंश श्रीमती सुभद्रा कुमारी 'चौहान' की कविता से लिया गया है।)

पिया मिलन की व्याकुलता

१९ फिर ध्यान-समाधि से सचेत होती है तो वेदना के स्वरों में उसकी व्याकुल दशा से ऐसी रट निकलती है—

हे स्वामी !

(१) मैं कबसे सीस झुकाए बैठी हूं, दो दर्शन भगवान्।

(२) मैं अश्रु हार पिरोये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(३) मैं नयन बिछाये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(४) मैं आस लगाये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(५) मैं अन्तःकरण सजाए ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(६) मैं सुन्दर सपने पिरोये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(७) मैं सुध बुध खोये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(८) मैं गीत संजोये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(९) मैं भक्ति रस बनाए ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(१०) मैं प्रेम की जोत जगाये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(११) मैं अहंकार गंवाये ,, ,,, ,, ,, ,, ।

(१२) मैं प्राणों की बाजी लगाए ,,, ,, ,, ,, ।

अब दो दर्शन भगवान् ! अब दो दर्शन भगवान् ! अब दो दर्शन भगवान् ! कहती-कहती पुनः ध्यान स्थित हो जाती है। शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! की मानसिक रट लगी रहती है।

प्रार्थना भाव

२०. अगले दिन फिर भक्ति भरे हृदय के अन्तराल से प्रार्थना के ऐसे भाव निकलते हैं—

'हे नाथ, बहुत आँख मिचोली हो ली,
अब और न छुपो स्वामी'।

और आओ आओ आओ—

(१) हे ! सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ! मेरे शरीर का रोमांच स्पर्श बनकर आओ।

(२) हे सुन्दर, हे मनोहर, हे निर्मल ! अपने ओजस्वी दिव्य संगीत छेड़ते हुए आओ।

(३) हे मेरे प्राण स्रोत, प्राण आधार, प्राणपति, मेरे प्राण की प्रत्येक धड़कन में आओ।

(४) हे दर्शनीय, प्रदर्शनीय, विचर्षणीय, मेरे मुग्ध नयनों में रूप-सुधा बनकर आओ।

(५) हे करुणा के सागर, दया के सिन्धु, कृपा के भंडार, प्रभु मेरे अन्तर में, सुख-शान्ति और आनन्द की पावन गंगा बहाते आओ।

(६) हे आनन्द घन, सच्चिदानन्द, दिव्य गुण सम्पन्न, मेरे चित्त में हर्ष का आह्लाद लेकर आओ।

(७) हे सीमा में असीम, शेष में अशेष, अपूर्ण में भी पूर्ण, मेरे कल्याण का पथ प्रदर्शक बनकर आओ।

(८) हे निमानियों के मान, निओटियों की ओट, निर्बलों के बल, मुझमें अपने तेज, ओज, ज्ञान और बल का संचार करने आओ

(९) हे मेरे जीवन-लक्ष्य ! जीवन-सार, जीवन-प्रभात मेरे जीवन में वसन्त बहार बनकर आओ।

(१०) हे मेरे नयनों के तारे, प्रेम दुलारे, परम प्यारे, मेरे सपनों में नित्य नये-नये रूपों में सज-धज कर राजसी ठाठ के साथ आओ।

(११) हे इन्द्र, वरुण ! अग्ने, बृहस्पते मेरा अन्तःकरण उज्ज्वल, विकसित, जागृत और अपने ध्यान में समाहित करने आओ।

(१२) हे मेरे हृदय सम्राट्, विराट् जग-त्रात—मुझ अधीर का धीर बन्धाने, विरह की व्याकुलता मिटाने और अपने सुमिलन से रिझाने के लिए शीघ्र आओ।

(१३) आओ-आओ-आओ की प्रेमभरी रट लगाते हुए शिव ओ३म् ! शिव ओ३म् !! शिव ओ३म् !!! की धुन में उसका मन द्रवित हो जाता है और उसके नैयनों के प्रेम जल से अन्तःकरण का सब मल, अवर्ण, विक्षेप दूर होता है और आतम स्थिति बन आती है।

विरह की वेदना

२१. **अगला दिन**:—आज विरह की स्थिति में प्रीतम को उलाहना देती है—

'नाथ ! अनेक दिवसानों दिवस बीत गए, वसन्त के फूल खिलकर विदा हो गए। ग्रीष्म की अनुगामिनी वर्षा ऋतु भी समाप्त हो गई। शरद् छा गई। तेरे आगमन की सुखद प्रतीक्षा में देखते-देखते आंखें थक गईं, पक गयीं, रो-रोकर

नयनों का जल समाप्त हो गया। निराहार रहकर यह जीवन लता सुख गई। कबसे तेरी राह में पलकें बिछी हैं, पर तेरे दर्शन नहीं हो रहे। यह भिखारी मन तेरी करुणा की याचना कर रहा है। पर कामना पूरी नहीं हो रही, कब तक यह मन-मन्दिर सूना-सूना रहेगा।

यह कान तेरी ओर लगे हैं, पर तेरी पग-ध्वनि सुनाई नहीं देती। कब तक ऐसे तेरी राह देखती रहूँगी? कब तक यह हृदय सिंहासन खाली रहेगा? कब ये वियोग की लम्बी घड़ियाँ समाप्त होंगी? कब मेरे जीवन की प्रभात होगी? कब तेरा मंगल-मिलन होगा? कब होगा? कब होगा? कब होगा? कहती और शिव ओ३म्! शिव ओ३म्! शिव ओ३म्! जपती नित की भांति समाधिस्थ हो जाती है।

अन्तिम पुकार

२२. हे मेरे प्यारे, न्यारे, दुलारे! मेरा अधीर हृदय अब वियोग का और विलम्ब सहन नहीं कर सकता। विरह की व्याकुलता बेचैन कर रही है। सब कुछ नीरस प्रतीत हो रहा है और कुछ करना निस्सार है, निष्प्रयोजन है, जीना व्यर्थ हो गया है। यदि आज आपके चिरकाल प्रतीक्षित दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तो मेरा अन्तिम नम्र प्रणाम स्वीकार कीजिए। इसके अतिरिक्त मेरी अपनी वस्तु और है ही क्या? जो आपके पवित्र चरणों में भेंट कर सकूं। अच्छा, तेरी इच्छा पूर्ण हो। मैं अपने साथ केवल इन अधूरे अरमानों को लिये जा रही हूँ। तीसरे प्राणायाम के साथ अपने इन निरुपयोगी प्राणों को अब सदा के लिए इस शरीर से पृथक्

कर दूंगी और तेरी सुन्दर विश्व सभा से प्रस्थान कर जाऊंगी। इस जीवन में यदि मेरे से कोई अपराध हुआ हो तो देव उसे क्षमा करना।

२३. मंगल-मिलन

व्याकुलता की इस पराकाष्ठा में उस सुन्दर दिवस की अन्तिम घड़ियों के मन्द प्रकाश में वह स्निग्ध भरी वेला उपस्थित होती है। सहसा सम्पूर्ण वातावरण प्रकाशित हो उठता है। विलक्षण ज्योति से जगमगा जाता है। खुशियों से भर जाता है। आनन्द से झूम जाता है। प्रकृति का हर दृश्य नृत्य करता दिखाई देता है। उत्सवमय प्रतीत होता है। दिव्य सुगन्धि से भर जाता है। और अनायास किसी अदृश्य दिशा से दिव्य ज्योति से भरपूर भगवान् शिव जी उतरते हैं और पार्वती को अपनी वरद भुजाओं के आलिंगन में ले लेते हैं।

कितना अनोखा दर्शन, कितना सुन्दर महा मिलन होता है। आकाश से देव आशीषों की पुष्प वर्षा करते हैं। दिशायें जय-जयकार गाती हैं। ऊपर हंसों के टोले अपनी उड़ान को झुका कर अभिनन्दन करते हैं और पार्वती अपने प्रीतम की हर्षित भावनाओं से आरती उतारती है—

१. जय शिव ओङ्कारा स्वामी जय शिव ओङ्कारा।
बहती जिनके द्यौलोक में, निर्मल गङ्गधारा॥
तेरा सबसे नाम प्यारा। जय शिव ओङ्कारा……

२. कल्याणकारी, हितकारी, मङ्गलकारी हे दाता।
अगम, अगोचर, अलख निरंजन सब जग के विधाता॥
हे मेरे प्राण आधारा। जय शिव ओङ्कारा……

३. सर्वाकार, निराकार, निर्विकार सहस्रनामी।
घट-घट के जाननहारे हो अन्तर्यामी।
सबसे विलक्षण रूप न्यारा। जयशिव ओङ्कारा······

४. सब जग को है तेरा सहारा।
संकट मोचन नाम तिहारा॥
हे मेरे परम दुलारा। जय शिव ओङ्कारा ·····

५. महिमा तेरी कही न जाये।
अन्त तेरा कोई न पाये॥
हे मेरे नैनों के तारा। जय शिव ओङ्कारा······

६. भूत, भविष्य, वर्तमान के जाननहारे।
त्रिविध ताप निवारण हारे॥
हे भाग्य के मेरे सितारा। जय शिव ओङ्कारा··· ··

और चिरकाल तक उनके साथ सुख-शान्ति और आनन्द के हिंडोले में झूलती है।

२४. **मोक्ष की प्राप्ति**

हर मानव को ऐसी ही कठिन साधना करनी पड़ती है। इन अवस्थाओं से गुज़र कर ही निराकार ज्योति स्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु का साक्षात्कार होता है और ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष के महाकाल तक जीवात्मा स्वतन्त्र, शरीर रहित, ज्ञान सहित परम आनन्द के स्रोत में मग्न रह कर पुनः सतयुग के आरम्भ में उच्च कोटि का जन्म लेता है।

यही 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' की सिद्धि है। गायत्री मन्त्र की उपासना से प्राप्त ऋतम्भरा सुमेधा बुद्धि से ही ऐसी प्रेरणा

मिलती है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के फल इस जीवन वाटिका में खिलते हैं।

हमने जान लिया—

जब चाह प्रियतम में मस्ती छायेगी।
याद और किसी को न कभी आयेगी॥

ध्यान समाधि निश्चय बन जायेगी।
बिछड़ी आत्मा प्रीतम से मिल पायेगी॥

रूपक के सम्बन्ध में

मेरी अभिलाषा है कि थोड़े से परिवर्तन से इस नाटक को स्टेज पर प्रस्तुत किया जाये, इसलिए कन्या गुरुकुल के माननीय आचार्यों से प्रार्थना है कि वे इसे करा दें। इसमें केवल पार्वती का मुख्य और लम्बा पार्ट है। यदि कोई कन्या या देवी इसे भली प्रकार अदा कर सकती हो तो उनकी सूचना की प्रतीक्षा करूँगा और फिर किसी आर्य पर्व पर इस का प्रदर्शन करा गा। धन्यवाद!

॥ ओ३म् शान्ति दूं! शान्ति !! शान्ति !!! ओ३म् ॥

'—साधक'

॥ ओ३म् ॥

भूमिका भजन सरिता

इसमें भावयुक्त कविताएँ और अधिकतर भजन मेरे हैं, कुछ औरों के पद लेकर मिश्रित या पूरे जो मेरी जानकारी में अन्य जगह प्रकाशित नहीं हुए तथा कुछ वे प्रसिद्ध भजन जिनमें परमेश्वर को 'तू' से सम्बोधित किया गया है, एवं संन्यासी, विद्वान्, याजक, साधक सभी वैसा ही गाते हैं। किन्तु मुझे अपने प्यारे पिता के लिए ऐसा शब्द सुनना अच्छा नहीं लगता, जैसे हमारी सन्तान यदि हमसे 'तू' कहकर बात करे तो बुरा लगेगा। जब मैं इस विषय में किसी को कहता हूँ तो प्रायः आर्य समाजी भाई कहते हैं कि 'जब किसी से घनिष्ठता होती है तो उसे 'तू' कह दिया जाता है;" मेरा उत्तर होता है "क्या हमारा परमात्मा से ऐसा मित्रता का सम्बन्ध हो गया ? जो उनके अनुसार गुण-कर्म-स्वभाव आचरण में लाने में होता है और उन्होंने हमारा सखा बनना स्वीकार कर लिया ?" तब वे चुप हो जाते हैं। मेरे पूजनीय याजक भाई-बहन जो भी भजन बनाते हैं, वे इसका विचार नहीं करते। न कोई महात्मा जन सुनकर इस पर आक्षेप करते हैं, इसलिए मैंने यहाँ लिखना उचित समझा।

मैं स्वयं ऐसे शब्द-परिवर्तन करके गाया करता हूँ। इसलिए कुछ वे भजन भी 'तू' शब्द को बदल कर उदाहरण-स्वरूप दे रहा हूँ।

पहला और अन्तिम भजन स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज द्वारा गाये जाते हैं, वे भी अन्य किसी पुस्तक में छपे नहीं देखे, अतः आवश्यक समझकर प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मेरा अनुभव है कि भजन बनाने के अभ्यास से भक्ति-भाव बनते और प्रबल होते हैं, अधिक भजन विरह की व्याकुलता के या वेदना के (जैसे कल्याण मेरे इस जीवन का……) अथवा अपनी अवस्था-अनुसार प्रार्थना के बनाकर गाने चाहिए।

हम साधक कवि नहीं हैं, इसलिए कविताओं को छन्द, अलंकार और शैली की कसौटी पर न कसें, केवल भावों को मान्यता दें, कविता की कमियों पर ध्यान न दें।

—हरबंस लाल सहगल 'साधक

१. वैदिक राष्ट्र-मन्त्र गीत

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

(य० २२-२२)

राष्ट्र हमारे में ब्राह्मण हों ब्रह्म तेज से भरे हुए। ब्रह्म तेज से०
महारथी योद्धा हों क्षत्रिय शूर वीरता भरे हुए॥ शूर वीरता०

गायें दूध बहुत देती हों, बैल बली ढोने वाले।
घोड़े तेज रथों में बैठें वीर विजय पाने वाले॥ राष्ट्र हमारे०

महिलायें अति बुद्धिमती हों, कार्यों में सब भाँति कुशल।
वीर युवक यजमान पुत्र हों, धार सभ्य प्रतिभा वाले॥

बादल बरसें ठीक समय पर, फलवाली औषधियाँ हों।
हो कल्याण सदा हम सबका, शुद्ध कार्य शुभ मतियाँ हों॥
राष्ट्र हमारे०

२. गायत्री भजन

तुमने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहे हो तुम।
तुम से ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरते तुम॥

तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में, हो रहे हो विद्यमान॥

तेरा ही धरते ध्यान हम, माँगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को धर्म-मार्ग पर चला॥
ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

३. भजन-प्रार्थना

ईश्वर तुम्हीं दया करो, तुम बिन हमारा कोन है।
दुर्बलता दीनता हरो, तुम बिन हमारा कौन है॥१॥
माता तुम ही तुम ही पिता, बन्धु तुम ही तुम, ही सखा।
तुम ही हमारा आसरा, तुम बिन हमारा कौन है॥२॥
जग को रचाने वाले तुम, दुखड़े मिटाने वाले तुम।
बिगड़ी बनाने वाले तुम, तुम बिन हमारा कौन है॥३॥
तेरी दया को छोड़ कर, कुछ भी नहीं हमें खबर।
जाएं तो जाएँ हम किधर, तुम बिन हमारा कौन है॥४॥
तेरी लग्न, तेरा मनन, भक्ति तेरी, तेरा भजन।
आएँ हैं हम तेरी शरण, तुम बिन हमारा कौन है॥५॥
बालक सभी हैं हम तेरे, तुम हो पिता परमात्मा।
हम पे हो बस तेरी दया, तुम बिन हमारा कौन है॥६॥

४. भजन-वेदना

कल्याण मेरे इस जीवन का भगवान् न जाने कब होगा।
ज़िससे भय भ्रान्ति मिटा करती वह ज्ञान न जाने कब होगा॥१॥
जिससे निज दोष दिखा करते, पापों अपराधों से बचते।
उस सद्विवेक-ख्याति का, भान न जाने कब होगा॥२॥

अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरु जी बहुविधि समझाते थे।
उन वेद विहित आज्ञाओं का, सम्मान न जाने कब होगा ॥३॥

नहिं विषयों की याद सताती है, वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है।
भोग-स्थल से योग स्थल में, प्रस्थान न जाने कब होगा ॥४॥

शीतलता जिससे आती है, सारी अशान्ति मिट जाती है।
वह नित्य प्राप्त है प्रेम-सुधा, पर पान न जाने कब होगा ॥५।

वासना और चिन्ता मन में, न विषय-विकार सताते हैं।
उस निरुद्ध अवस्था का स्वामी, अनुमान न जाने कब होगा ॥६॥

हम बाहर दीप जलाते हैं, अन्दर तो है अन्धकार भरा।
इस तिमिर अज्ञान अविद्या का, अवसान न जाने कब होगा ॥७॥

चित्त चिन्तन जब सब खोता है, योगस्थित हो जाता है।
जिससे प्रभु जी तेरे दर्शन हों, वह ध्यान न जाने कब होगा ॥८॥

५. भजन

जब प्रभु दया का दान मिले,
और करुणा उसकी महान् मिले।
भवसागर में बहती नैया को,
फिर दूर किनारा मिल जाये ॥१॥

तेरी सुन्दर रचना से भगवन्,
तुझको है अब पहचान लिया।
आशाओं की झोली भर जाये,
जब तेरा द्वारा मिल जाये ॥२॥

मैं दीन हूँ, दीन दयाल हो तुम,
अल्पज्ञ हूँ मैं, सर्वज्ञ हो तुम।
अज्ञान का पर्दा हट जाये,
जब तेरा इशारा मिल जाये ॥३॥

जीवन की दुर्गम राहों पर,
संकट अक्सर आ जाते हैं।
वे दूर तभी हो सकते हैं
जब ज्ञान उजाला मिल जाये ॥४॥

बेबस हूँ मैं लाचार बहुत
दुष्कर्मों के संस्कार बहुत,
कल्याण तभी हो सकता है
जब तेरा सहारा मिल जाये ॥५॥

इस दुर्लभ जीवन को पाकर
और भक्तगुरु की कृपा से।
अब दिल में तड़फ ये आयी है।
कहीं प्रीतम प्यारा मिल जाये ॥६॥

अपने मुझको अपना न सके,
औरों को उलाहना क्यों कर दूँ।
पर और किसी से क्या मतलब,
जब अपना दुलारा मिल जाये ॥७॥

तुम भगवन् बड़े दयालु हो,
निज भक्तों की सुध लेते हो।
और सर्ववरों के दाता हो,
वरदान तुम्हारा मिल जाये ॥८॥

है विनती एक यही भगवन्,
है एक निवेदन यह मेरा।
इस जन्म-मरण के बन्धन से,
अब तो छुटकारा मिल जाये ॥६॥

—'साधक'

६. वेदना

सायंकाल है जीवन का आया,
नहीं मंज़िल को अब तक है पाया।
यत्न करता हूँ अब तो बहुतेरा,
प्रभु जो दीदार का हो सबेरा ॥१॥

कोटि जन्मों से छायो घटाएँ,
आगे-पीछे हैं और दाएं-बाएं।
वश चलता नहीं कुछ मेरा,
प्रभु जी दीदार का हो सबेरा ॥२॥

पाँच शत्रुओं ने मन को था घेरा,
अब हटाया ये विषयों का डेरा।
दूर मन्त्रों से हुआ कुछ अन्धेरा,
प्रभु जो दीदार का हो सबेरा ॥३॥

सब की सुनते हो हे जग के त्राता,
तेरे दर से नहीं कोई खाली आता।
मिटा दो आवागमन का ये फेरा,
प्रभु जी दीदार का हो सबेरा ॥४॥

अन्तर्ध्यान की ज्योति जगा दो,
प्रेम-भक्ति का झरना बहा दो।
वास हो जाये हृदय में तेरा,
प्रभु जी दीदार का हो सबेरा ।।५।।

'साधक'

७. प्रार्थना

प्रभु नाम की मस्ती हो हरदम,
किसी और का न कभी ध्यान रहे।
रहे और न करना कुछ बाकी,
केवल इक तेरी याद रहे ।।२।।
रहूँ तेरे दर का हो भिक्षुक,
कहीं और न मेरी आस रहे ।।३।
अब धर्म-कर्म में लग जाऊं,
ता कि न फिर अरमान रहे ।।४।।
होता है न जीवन सफल कभी,
पुरुषार्थ न जब तक बना रहे ।।५।।
वाणी पिता प्रति मधुर बने,
और उस पर तेरा नाम रहे ।।६।।
दरबार तेरे का बनूँ कवि,
हृदय में ये उद्गार रहे ।।७।।
मन विषयों में न जाने दूँ,
सदा ऐसा मेरा यत्न रहे ।।८।।
जब तक न पाऊं दरस तेरा,
नित्यकर्म हमेशा अमर रहे ।।६।।

इस जन्म में दर्शन न भी हो,
दीदार की आशा बनी रहे ॥१०॥
वरदान मुझे ये दें भगवन्,
ब्रह्मज्ञान जिज्ञासा सतत रहे ॥११॥

'साधक'

८. जान लिया

संसार में रोते आया था,
पर जग से हँसते जाना है।
है एक मेरी अभिलाष यही,
मुक्ति को शीघ्र पाना है ॥१॥

हूँ परम्परा से देख रहा,
कोई आता है, कोई जाता है।
भोग-इच्छा इसका कारण है,
निश्चय इसे मिटाना है ॥२॥

जो सब कुछ इस जा पाया है,
सब ईश्वर की ही माया है।
त्यागपूर्वक उपभोग करूँ,
वेद ने यह फरमाया है ॥३॥

और यह भी मैंने जान लिया,
संसार यह कर्म क्षेत्र है।
आसक्ति त्याग गर कर्म करें,
तो बन्धन रहित हो जाना है ॥४॥

ज्ञान-कर्म, उपासना से,
प्रीतम का दर्शन होता है।

भक्ति के मेघ द्वारा ही,
आनन्द की वर्षा होती है ।।५।।
दोषों का निवारण किये बिना,
कल्याण नहीं हो सकता है।
यम-नियम, पालन इसीलिए,
सर्वप्रथम अति आवश्यक है ।।६।।
योग-साधना से ही केवल,
इन सब की सिद्धि होती है।
पञ्चयज्ञ किये बिना नहीं,
सुखों की वृद्धि होती है ।।७।।
इन्द्रियों को वश में रख कर ही,
जीवन में संयम आता है।
है योग-साधन दुस्वार बहुत,
पर और नहीं कोई चारा है ।।८।।
सो भगवन् तेरी करुणा का ही,
मुझको एक सहारा है।
भव-सागर से जी पार करो,
कोई और न खेवनहारा है ।।९।।

—साधक

९. आत्म-निवेदन

प्रभु शरण में जब से आया हूं,
चञ्चल मन को अब चैन आया है।

तुमने बख्शी है मुझको ऐसी खुशी,
मेरा रोम-रोम मुस्काया है॥
मैं किसी के दर-पे क्यों जाऊँ,
तेरे आगे जो सिर झुकाया है॥
अब न कोई गम, न डर, न फिक्र रहा,
तेरी रहमतों का जबके साया है।
कोटि जन्मों से था ढूंढ रहा,
बहुत यत्नों से तुम्हें अब पाया है॥
अपने चरणों से न जुदा करना,
अपना भक्त अगर बनाया है॥
हर दम तेरा ही मुझको ध्यान रहे,
अब तो मन में यही समाया है॥
अपने हृदय को सदा साफ रखूँ,
जिसमें प्रीतम को अब बसाया है॥
तेरा दामन न फिर कभी छूटे,
बड़ी मुश्किल से हाथ आया है॥
देख अक्ल है दंग रह जाती,
ऐसा सुन्दर जहाँ रचाया है॥
क्या विचित्र तेरी लीला है,
कहीं धूप, कहीं छाया है॥
धारणा वही अता कर दो,
ऋषि-मुनियों ने जिससे ध्याया है॥
देव ! मेरा तो कुछ नहीं अपना,
तेरी दी हुई सब माया है॥
दो आशीष वही करूँ भगवन्,
जो वेद में फरमाया है॥

हैं भाव सभी तेरे,
जो कुछ भी ये गाया है ॥
अब तो प्रभु विराम मिले,
लिया बहुत घुमाया है ॥

—साधक

देवता-इन्द्र

ओ३म् अहं च त्वं च वृत्रहन् सयुज्याव सनिभ्य आ।
अरतीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते, भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥

(ऋ० ८.७२.११)

अर्थ :—

हे विघ्न विनाशक, दुष्ट संहारक, इन्द्रशूर महान्।
अदान भावना सभी मिटा दो, जिससे हो जीवन उत्थान।
समर्पण तेरे होकर के, गर तेरा जो बन जाऊँ।
फिर तुझ में समा जाऊँ, कल्याण सभी पाऊँ ॥
भद्र तेरी देनें और अनुमतियाँ सदा पाऊँ।
सुखमय मेरा जीवन हो और भवसागर से तर जाऊँ ॥

१०. मन्त्र के आधार पर

हे सौम्य प्रभुजी वह प्रेम रस पिला दो।
सब दुर्गुण दूर करके अपना भक्त बना दो ॥१॥
अनुमति को तेरी पाकर ही कार्य करूँ मैं।
न विघ्न कोई आये ऐसा सबल बना दो ॥२॥

कल्याणकारी देनें मिलती रहें हमेशा।
अदान भावना को बिल्कुल यदि मिटा दो ॥३॥

चञ्चलता और चिन्ता अब दूर कीजिएगा।
कुटिया में शान्ति की, आनन्द से बिठा दो ॥४॥

तेरी अनुग्रह से अज्ञाम को मिटा दूँ।
खुल जायें ज्ञाल-चक्षु बुद्धि में नूर ला दो ॥५॥

दुनियाँ के सब झमेले अब तो प्रभु छुड़ा दो।
उपकार कार्य हों यज्ञ-कर्मों में लगा दो ॥६॥

केवल तेरी लगन में बेसुध रहूं हमेशा।
मस्ती में लाने वाला, भक्ति का रस पिला दो ॥७॥

युगों से हूं मैं तेरा भटका हुआ मुसाफ़िर।
मंज़िल पर जल्दी पहुंचूं वह रास्ता बता दो ॥८॥

सत्य और न्याय सर्वत्र लोप है अब।
महर्षि कोई आये, ये भाग्य अब जगा दो ॥९॥

वेदों की की वंशी लेकर धरती पर जो गुंजाये।
या ज्ञान गीता का ही किसी कृष्ण से सुनवा दो ॥१०॥

—साधक

११. क्या करना ?

रे मन क्यों हिर्स करता है, हमें संसार क्या करना।
ये नश्वर है जगत् सारा, लगा कर चित्त क्या करना ॥१॥

मुसाफ़िर खाना ही तो है, जहाँ चन्द रोज़ है रहना।
तो इस रैन बसेरे की, हमें परवाह क्या करना ॥२॥

कहाँ गये कौरव और पाण्डव, महायोद्धा, महाराजे।
हुए सब खाक में दाखिल, हमें गुलज़ार क्या करना ॥३॥

ये सब तो ईश की माया, जो कण-कण में समाया है।
नहीं वस्तु कोई अपनी, तो इससे राग क्या करना ॥४॥

यहीं सब कुछ रह जाना है, ये सारे भोग नश्वर हैं।
करें सन्तोष जो पाया, पर धन का लोभ क्या करना ॥५॥

हमें अधिकार कर्मों पर, नहीं अञ्जाम से मतलब।
असफलता भी अगर होवे, तो इसका ग़म क्या करना ॥६॥

वही जो सर्व व्यापक है, उसे हम देखें कण-कण में।
बने गर दृष्टिकोण ऐसा, तो रहेगा शेष क्या करना ॥७॥

बहुत अज्ञान-निद्रा में, उम्र अब तक गंवायी है।
जागें इस नीन्द ग़फलत से, ऐसा सो कर के क्या करना ॥८॥

गर्भ-इकरार कर लें याद कि इस जन्म में निश्चय।
प्रभु-भक्ति को साधेंगे, बस फिर और क्या करना ॥९॥

ये धन-दौलत मकां अपने कभी न साथ जायेंगे।
तो फिर हीरे-जवाहर लाल, गजरे हार क्या करना ॥१०॥

जिन्हें समझे थे, अपना मित्र-सम्बन्धी, उन्हीं से धोखा खाया है।
तो फिर इस झूठी दुनिया का, हमें विश्वास क्या करना ॥११॥

यहां पर रोग है शोक है, बुढ़ापा और मृत्यु है।
महात्मा बुद्ध की नाईं, हमें और गृहस्थ क्या करना ॥१२॥

चौरासी लाख योनि घूम कर, चोला ये पाया है।
इसी से मोक्ष मिलना है, इसे बर्बाद क्या करना ॥१३॥

आवश्यकता और इच्छा को घटायें, न कामना बाकी रहे कोई।
ऋणों से उऋ ण हो जायें, हमें अधिकार क्या करना ॥१४॥
दैनिक पञ्च महायज्ञ ही, इस भव सागर की नौका हैं।
बना लें ओ३म् खिवैया, तो और आधार क्या करना ॥१५॥
लगे उससे लगन ऐसी, रहे वह ध्यान में हरदम।
समाधि जिससे सिद्ध होवे, तो साधन और क्या करना ॥१६॥
है जीवन का यही उद्देश्य परमानन्द को पाना।
प्रभु चरणों में झुक जायें, हमें अहङ्कार क्या करना ॥१७॥
जो अनित्य अशुचि अनात्म और दुःखमय हैं।
समझ बैठे उलट इनको, अविद्या ऐसी क्या करना ॥१८॥
ये सब घटते हैं इस शरीर पर, विचार कर देखें।
क्लेशों का जो कारण है, तो इसका मोह क्या करना ॥१९॥
बहुत थक चुके अब तो पराया देश छोड़े हम।
चलें ब्रह्मधाम निज अपने, यहाँ रह और क्या करना ॥२०॥

—साधक

१२. होली-भजन

र मन ऐसी होली खेलें।
प्रेम-भक्ति के रंग की, वेद ज्ञान क तरंग की।
प्रभु-मिलन के उमंग की, ऋषि-मुनियों के संग की ॥१॥

रे मन ऐसी होली खेलें।
जिसका रूप होवे निराला, गुण से अमृत का हो प्याला।
मस्ती की ला दे जो हाला, बिना पिये कर दे मतवाला ॥२॥

र मन ऐसी होली खेलें ।

लें वो रंग जो हों गुलनार, भरें सदा जो सत्य विचार ।
छायी रखे सदा बहार, कर दे जीवन को जो गुलज़ार ।।३।।

र मन ऐसी होली खेलें ।

कभी न उतरे जिसका रंग, जो देखे हो जाये दंग ।
प्रेम से भर दे सारे अंग, निर्मल कर दे जैसे गंग ।।४।।

रे मन ऐसी होली खेलें ।

जो रंग नभ की उषा में, सन्ध्या की पुलकित रजनी में ।
इन्द्र धनुष की शोभा में, गुलाब-गेन्दे के फूलों में ।।५।।

रे मन ऐसी होली खेलें ।

जो रचनेहार की रचना में, पूर्णिमा की चान्दनी में ।
जल भरे सावन मेघों में, मोर-तितली के पंखों में ।।६।।

र मन ऐसी होली खेलें ।

यम-नियमों की हो पिचकारी, जो दूर करे अज्ञान अंधियारी ।
लावे प्रीति धर्म में भारी, प्रीतम हों जायें बलिहारी ।।७।।

रे मन ऐसी होली खेलें ।

भगवान् कृष्ण ने जैसी खेली, बजा बाँसुरी परम सुरीली ।
खेलें हम वैसी अलबेली, सुलझ जाये जीवन पहेली ।।८।।

—साधक

१३. 'भजन' मौत को याद रखें

यह जन्म-मरण कहते जिसको, ब्रह्मा की एक कहानी है ।
यह जीवन रैन-बसेरा है, यह दुनिया आनी जानी है ॥
माया में तुम क्यों फूले हो, क्यों सत धर्म को भूले हो ।
ज्यों जल की लहर उठती-मिटती, त्यों दुनिया बहता पानी है ॥

जो कहता तेरा मेरा है, यह मोह-ममता का घेरा है ।
हर सुख में भी है दुःख छिपा ऋषियों का ऐसा कहना है ॥
यह जन्म मरण... ... ...
यह चित्त में भरी सब वासना है,
विषयों की मन में तृष्णा है ।
जो समझे नहीं वो मूर्ख है
जो समझ गया वो ज्ञानी है ॥
यह जन्म मरण... ... ...

१४. श्रद्धाञ्जलि

पूज्य लाला गणेश दास जी अग्निहोत्री के महाप्रयाण (७.२.८६) पर जो मैंने पढ़ी ।

प्रयाग-निकेतन की फुलवाड़ी का,
इक खिला पुष्प है टूट गया ।
इस यज्ञ-सदन का महायाजक,
यहाँ से है अब लौट गया ॥१॥

वे यज्ञों के परम शेदाई,
दीवाने मतवाले थे ।
वेद के सैकड़ों यज्ञ किये कराये
ऐसे वे मस्ताने थे ॥२॥

एटा गुरुकुल के दण्डी स्वामी ने,
देख इनके इस कर्मकाण्ड को।
अग्निहोत्री की उपाधि से,
सम्मानित किया था पत्नी सहित इनको ।।३।।

समय के थे पाबन्द वे इतने,
घड़ी लोग मिलाते थे।
वेद के जहाँ भी यज्ञ होते,
सामग्री मुफ्त पहुँचाते थे ।।४।।

अतिथि-सत्कार श्रद्धा से करते,
दान सभी को देते थे।
कष्टों के आने पर भी,
धीरज को नहीं खोते थे ।।५।।

उनके ही सम्पर्क में आकर,
मैं भी चल पाया उस पर।
आज दुःख है चले गये वे,
कइयों के वे भाग्य जगाकर।।६।।

शयन-शय्या पर मरते दम तक,
हाथ में थी उनके माला।
ओ३म् नाम का स्मरण मुख में,
अभ्यास कारण थी वह हाला ।।७।।

शान्त रहे वह सदा आत्मा
माँगू यह प्रभु से वरदान।
अमर रहे कीर्त्ति उनकी,
फले-फूले उनकी सन्तान ।।८।।

—साधक

१५. शान्तिपाठ गीत

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः
पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे-
देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा
शान्तिरेधि ।। (य० ३६-१७)

१. शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में। शान्ति कीजिये..............

जल में थल में और गगन में,
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में।
औषधि वनस्पति वन उपवन में,
सकल विश्व में जड़ चेतन में ।। शान्ति कीजिये..............

२. ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में।
वैश्य जनों के होवे धन में,
और शूद्र के हो चरणन में ।। शान्ति कीजिये..................

३. शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में,
नगर ग्राम में और भवन में।
जीव मात्र के तन में मन में,
और जगति के हो कण कण में ।। शान्ति कीजिये ....

अशुद्धि पत्रम्

पृ. सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	सत्रहवीं	महाऋषि	ऋषि
१३	आठवीं	का	की
१४	बाईसवीं	तुकारता	पुकारता
१५	ग्यारहवीं	हूँ कैसे तझे	कैसे तुझे
१७	पहली	दवी	देवी
,,	सत्रहवीं	योने-अभ्यास	योग-अभ्यास
३०	अन्तिम	ज़र-ज़र्रे	ज़रे-ज़रे
४३	पन्द्रहीं	करा गा	करा दूंगा
,,	सोलहवीं	शान्ति दूं	शान्ति
५४	तेरहवीं	दुस्वार	दुशवार
५७	पन्द्रहवीं	की की	की
५९	पहली	न कामना बाकी रहे कोई	रहे न कामना कोई
,,		होली भजन	आध्यात्मिक होली

इस भजन में जहाँ 'र' हैं वहाँ 'रे' शब्द पढ़ें।

पृ. सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	दूसरी	क	के
६०	तीसरी	को जो	को
६२	चौदहवीं	उस पर	उस पथ पर
६२	पन्द्रहवीं	वे	हैं